समयसार, ३२० गाथा। जयसेनाचार्य की टीका। गाथा का तात्पर्य क्या है, वह टीका लेंगे। तात्पर्य क्या है तात्पर्य? सारे जैनदर्शन का तात्पर्य सार क्या है?-वह बात चलती है। जरा सूक्ष्म है। अनन्त काल से... कहते हैं कि यहाँ तो धर्म की शुरुआत कही है परन्तु आत्मा ज्ञानस्वभाव और आनन्दस्वभाव—ऐसा होने पर भी, अनादि से पुण्य और पाप, विकल्प जो राग अशुद्ध विकार, उसरूप परिणमता है। उसके कर्तारूप परिणमता है और भोक्तारूप-भोक्तारूप से परिणमता है, वह अधर्म है। बाह्य के साथ कोई धर्म-अधर्म की चीज़ को सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपनी निज चीज़, जाननस्वभाव-आनन्दस्वभाव को भूलकर, पुण्य और पाप के विकल्प-शुभ-अशुभराग का कर्ता होकर उसको भोगे, उसका नाम अधर्म, उसका नाम अशुद्धविकार का परिणमन, उसका नाम संसार है।

मुमुक्षु : उसमें दुःख तो नहीं होवे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है, वह दुःख है। इस विकाररूप परिणमना, वही दुःख है। अधर्म है तो दुःख यही है। समझ में आया?

भगवान आत्मा नित्यानन्द, नित्य अविनाशी ज्ञान और आनन्द का भण्डार प्रभु है, ऐसी चीज़ को छोड़कर / भूलकर; पर का कर्ता होता तो नहीं माने तो भी चैतन्य। यहाँ तो अपनी पर्याय में वस्तु की दृष्टि बिना, अपनी चैतन्य महाप्रभु सत्ता होनेवाला पदार्थ, उसकी सत्ता का स्वीकार नहीं करके, अनादि से उसकी-अज्ञानी की दृष्टि शुभ और अशुभ विकल्प—दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, काम, क्रोध—ऐसे विकल्प अर्थात् राग का परिणमन करता है, वह कर्ता और उसका भोक्ता है, वह दुःख का भोक्ता है। समझ में आया? परचीज़ तो भोगने में आती ही नहीं, वह तो जड़ है। यह शरीर है, जड़ है, स्त्री का शरीर भी जड़, मिट्टी, माँस और हड्डियाँ हैं; दाल, भात, रोटी, सब्जी भी जड़, मिट्टी-धूल है। उसका प्रभु आत्मा (जो कि) रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित चीज़ (है, वह) ऐसी जड़ चीज़

को कैसे करे और कैसे भोगे ? समझ में आया ? वह तो कर्ता भी नहीं और जड़ शरीर का, दाल, भात, रोटी का भोक्ता भी आत्मा नहीं। समझ में आया ?

अज्ञान में भी (कोई) पर का कर्ता-भोक्ता नहीं। (मात्र) अपनी चीज़ जो शुद्ध चैतन्य है, उसे भूलकर राग और पुण्य-पाप के विकल्प-शुभाशुभभाव के सन्मुख देखकर, चैतन्य को पीठ देकर-अपने सम्पूर्ण निर्मलस्वभाव को पीठ देकर विकार के परिणमन में कर्तारूप होकर, विकार का भोक्ता है। वह अशुद्धता का परिणमन, वह कर्ता और भोक्ता, वही संसार, वही दुःख, वही चार गति में रुलने का बीज है। आहा..हा..! समझ में आया ?

अब धर्म कैसे होता है, यहाँ तो यह बात चलती है। यहाँ तो आया, जैसे दृष्टि... चक्षु पर... जैसे अग्नि जलानेवाला अग्नि जलाता है, वैसे चक्षु किसी भी परपदार्थ को करती नहीं। चक्षु करे ? (नहीं); और जैसे लोहे का गोला उष्ण होकर, लोहा उष्णता में तन्मय होकर, लोहा उष्णता को भोक्ता है; वैसे आत्मा, पर को भोगता नहीं है। यह आँख भोक्ता नहीं। आँख पर की कर्ता नहीं और आँख पर की भोक्ता नहीं।

जैसे अग्नि जलानेवाला अग्नि जलाता है, वैसे आँख पर की कर्ता नहीं हो सकती। इसी तरह लोहे का गोला उष्ण हो जाता है; वैसे आँख, पर की भोक्ता नहीं हो सकती। ठीक है ? वैसे भगवान आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द वस्तु ध्रुव चैतन्य (है), वह राग का भी कर्ता नहीं और पुण्य—दया, दान, व्रत, भक्ति का जो विकल्प है, उसका भी कर्ता नहीं, उसका भोक्ता ही नहीं। आँख के दृष्टान्त से। आँख समझे न ? चक्षु। समझ में आया ?

दूसरा भी दृष्टान्त देंगे। कल तो क्षायिकज्ञान का ही दिया कि जैसे दृष्टिवन्त धर्मात्मा शुद्ध भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति; विकार और शरीरादि से रहित और अपने आनन्दादि शक्ति / गुण से सहित (है), ऐसे अन्तर्मुख ध्रुवस्वरूप पर दृष्टि पड़ने से उसके परिणमन में क्या आया ? शुद्ध परिणमन हुआ। जो मिथ्या परिणाम था, राग और द्वेष, पुण्य और पाप का कर्ता होकर उसको भोक्ता था, वह अज्ञानभाव था, वह दुःखभाव था। उस स्थान में जब शुद्ध चैतन्यवस्तु जैन वीतरागमूर्ति आत्मा की दृष्टि करके जो शुद्धपरिणमन हुआ तो शुद्ध जीव भी राग का कर्ता-भोक्ता नहीं; वैसे शुद्धज्ञानपरिणत जीव भी कर्ता-भोक्ता नहीं। समझ में आया ? समझ में आवे वैसी बात है, हों! भाषा तो सादी है परन्तु अब (भाव तो गम्भीर है)। धन्नालालजी! समझ में आता है बापू! यह तो बापू! प्रभु का मार्ग

अन्दर का और लॉजिक से-न्याय से तो कहने में आता है। अब पकड़ना न पकड़ना, यह तो उसकी योग्यता प्रमाण है। देखो! हमारे पण्डितजी भी, आहा..हा..! भगवान!

कहते हैं जैसे चक्षु / आँख पर की कर्ता-भोक्ता नहीं; वैसे शुद्धज्ञान, त्रिकाली ज्ञानानन्द भगवान आत्मा और ज्ञानानन्द की दृष्टि हुई, (वह) शुद्धपरिणमनवाला धर्मी (हुआ) वे दोनों-यहाँ तो दृष्टि की बात पहले की है। भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब, चैतन्य-सूर्य— ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि होकर; जैसे राग और.. पुण्य मेरा मानकर परिणमन करता था, वह दुःख था, मलिन था। मैं त्रिकाल ध्रुव, शुद्ध आनन्दकन्द हूँ—ऐसी दृष्टि होकर शुद्ध-पवित्र मलिनतारहित आनन्द की परिणति / शान्ति की अवस्था हुई, उसका नाम धर्म और वह धर्म है। धर्मी जीव अथवा धर्म परिणत पर्याय, उस राग और पुण्य-पाप की क्रिया का कर्ता नहीं और राग की क्रिया का भोक्ता भी नहीं। आहा..हा..! पहले समझना तो चाहिए न कि क्या चीज़ है? कैसी है? यह जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं, वस्तु का स्वभाव है। जैन अर्थात्

जिन सोहि है आत्मा, अन्य सोहि है कर्म।
कर्म कटे जिनवचन से, ये जिनवचन का मर्म॥

भगवान परमात्मा, जो आत्मा सर्वज्ञ हुआ, वीतरागसर्वज्ञ हुआ तो कहाँ से हुआ? अपने स्वभाव में... पहले यह दृष्टान्त दिया था छोटी पीपर का-चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर पड़ी है और हरा रंग अन्दर पूरा पड़ा है, तो शक्ति की व्यक्तता होती है। है, उसमें से-प्राप्त की प्राप्ति है। है उसमें से आता है। यह चौंसठ पहरी चरपराहट जो बाहर में आयी और हरा रंग आया। काला रंग, पीपर है न काली, काली का व्यय होकर हरा रंग हुआ; चरपराहट अल्प थी, उसका नाश होकर चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया, सोलह आना (पूर्ण) चरपराहट प्रगट हुई। कहाँ से हुई?

मुमुक्षु : अन्दर में शक्ति थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में है। कुएँ में है, वह हौज में आता है। अवेड़ा (हौज का गुजराती शब्द) को तुम्हारे क्या कहते हैं? पानी आता है न बाहर में? अवेड़ा तो अपनी (गुजराती) भाषा है परन्तु हिन्दी... कुआँ होता है न कुआँ, उसमें से पानी निकलता है और बाहर पशुओं को पिलाते हैं।

मुमुक्षु : जानवरों को पीने के लिये हौज बनाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। पशु को पीने के लिये बाहर बनाते हैं परन्तु वह कुएँ में है, वह आता है या नहीं अन्दर में? या कुएँ में नहीं अन्दर में और बाहर आया? कुएँ में है पेशाब और यहाँ आया पानी - ऐसा है? समझ में आया? वैसे भगवान आत्मारूपी महा कुआँ-सागर-समुद्र है, उसमें ज्ञान और आनन्द सोलह आने-पूरा-पूरा-रुपया रुपया-सत्वरूप शक्तिरूप स्वभाव पड़ा है। समझ में आया?

जैसे पीपर को घोंटने से प्रगट होता है, वैसे भगवान आत्मा... यहाँ कहा शुद्धज्ञान, अकेला ज्ञायकभाव मैं। कोई कल पूछता था कि इस ज्ञायक की दृष्टि कैसे करना? परन्तु पहले यह समझे तो सही कि अनादि की दृष्टि इसकी पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् आस्रव और विकार पर पड़ी है। उस दृष्टि को अभी गुलांट खिलाना है। गुलांट समझे? परिवर्तन करना है, बदलना है। मैं तो ज्ञायक चिदानन्द ध्रुव आनन्द का धाम चैतन्यबिम्बस्वरूप अविकारी स्वभाव का सत्य एकरूप मैं हूँ - ऐसे शुद्ध की दृष्टि जब हुई, तो परिणमन अर्थात् वर्तमान प्रगट दशा में भी शुद्धता, आनन्दता, वीतरागता, पर्याय प्रगट हुई, उसका नाम धर्म है। समझ में आया? अरे! गजब धर्म, भाई! लोग कहते हैं सीधा सट्ट था, उसमें यह महंगा कर दिया। महंगा नहीं, यही चीज़ है। यह बात ही यह है परन्तु दुनिया समझे नहीं तो कुछ का कुछ धर्म का रूप दे दिया। ऐसा है नहीं। समझ में आया? धर्म का रूप ही दूसरा है।

कहते हैं, ऐसा शुद्धज्ञान पर का कर्ता-भोक्ता नहीं। राग का नहीं, व्रत का-विकल्प का कर्ता भी शुद्धज्ञान-धर्मपरिणत जीव (नहीं है)। जो अज्ञान था, तब तक तो कर्ता था, तब तो दुःखी था। स्वरूप का आनन्द और ज्ञान का अन्दर वस्तु की शक्ति का भान हुआ, अनुभव हुआ तो पर्याय में-प्रगट दशा में जो दुःख का अनुभव था, उसका नाश होकर आनन्द का अनुभव (हुआ)। शक्ति में जो आनन्द पड़ा है, वह आनन्द पर्याय में आया। वह आनन्दपरिणत जीव, राग को करता नहीं है।

रात्रि को कोई पूछता था न कि देव-समकिती युद्ध करते हैं, अमुक करते हैं...

मुमुक्षु : वह तो सरागसम्यग्दृष्टि ऐसा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सराग... भाई! यह तो सब व्यवहार की बात है। निश्चय में-

यथार्थ में तो धर्मी जीव अपने शुद्धरूप परिणमन में ही है। वह युद्ध का राग आया, उसमें वह है ही नहीं। उसका जाननेवाला, **अपनी पर्याय में अपने से अपने कारण से राग का ज्ञान करता है। अपनी सत्ता के सामर्थ्य से (राग का ज्ञान करता है)। राग है, इसलिए ज्ञान करता है-ऐसा भी नहीं।** अलौकिक बात है भगवान! शोभालालजी! आहा..हा..! भगवानदासजी! चार दिन से नहीं थे, आज पाँचवें दिन आये हैं। दरकार इतनी! लड़कों को सब ठीक करना हो न बाहर का-धूल-धाणी का।

मुमुक्षु : करने से कहाँ होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वहाँ मानता है न। श्रावण महीना है। पैसेवाले लोग सब आते हैं। ऐसा होगा कुछ, ऐसा होगा। (लड़का) ऐसा कुछ होगा। धुएँ को पकड़ना। यहाँ कहते हैं। ए ई! धुआँ समझे? धुआँ। धुआँ न रहे, बाँथ में धुआँ नहीं रहता, वैसे परचीज़ अपने में नहीं रहती। परचीज़ को अपनी करने जाये तो नहीं रहती, वह तो उसके कारण से होता है।

यहाँ कहते हैं तेरे हितबुद्धि-धर्मबुद्धि करना हो तो भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, चिदानन्दस्वरूप है-ऐसा अनुभवदृष्टि करके वेदन करना और वह पर का, राग आदि का कर्ता नहीं-एक बात। कहते हैं दृष्टि का विषयवन्त तो ऐसा है, परन्तु केवलज्ञानी परमात्मा भी राग के और पर के कर्ता नहीं हैं। नहीं हैं तो नहीं हैं, वह कर्ता नहीं-ऐसा बताया। यहाँ तो है तो भी कर्ता नहीं। केवलज्ञानी को तो राग है नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्तदेव वीतराग हुए, उनको तो राग नहीं है, तो वे राग के कर्ता नहीं और राग के भोक्ता नहीं; ऐसा दृष्टान्त देकर केवली के साथ साधक को मिलाया। समझ में आया? बात ऐसी है भगवान!

कल एक न्याय कहा था। सम्यग्ज्ञानदीपिका में से एक न्याय कहा था। कहा था। वह कहा था। सम्यग्ज्ञानदीपिका है। संवत् १९४८ के साल में एक दिगम्बर क्षुल्लक हो गये हैं - धर्मदास क्षुल्लक हुए हैं। समझ में आया? 'भेदज्ञान से भ्रम गयौ नहीं रही कुछ आस'। ऐसे संवत् ४८ में दो पुस्तकें बनायी हैं (१) सम्यग्ज्ञानदीपिका और (२) स्वात्मानुभव -मनन। हम तो बहुत साल से देखते हैं न! सम्यग्ज्ञानदीपिका ७८ के साल में देखा था। ७८, ४८ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : वह तो दिगम्बर होने की तैयारी थी न!

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सत्य है। ७८ में जंगल में जाते थे अकेले पुस्तक लेकर, सम्यग्ज्ञानदीपिका थी। उसमें यह लिया है 'सिद्धसमान अपने आत्मा को न जाने और जैसे सिद्ध ज्ञाता-दृष्टा है, वैसे छोड़कर एक राग का भी कर्ता हो तो सिद्धसमान अपने को माना नहीं, वह संसारी-मिथ्यादृष्टि-पापी है' - ऐसा लिया है। धन्नालालजी! तुम्हारी बीड़ियाँ-बीड़ियाँ तो कहीं रह गयीं! भगवानदासजी! बड़े सेठ हैं, ऐसे सेठ बुन्देलखण्ड के, धूल में भी सेठ नहीं। सुन न अब। यहाँ तो आत्मा श्रेष्ठ भगवान। सेठ अर्थात् श्रेष्ठ। चिदानन्द भगवान आनन्दकन्द प्रभु के सन्मुख देखकर... जो विमुख था, तब तो अज्ञानी था; अब सन्मुख देखकर जो अनुभव हुआ, वह राग का कर्ता नहीं और आनन्द का कर्ता है।

यह यहाँ तक आया। **वैसा होता हुआ...** है न, कौन सी लाईन है नीचे से? देखो! **(शुद्धज्ञानपरिणत जीव) क्या करता है?** देखो! शुद्धज्ञानपरिणत जीव... नीचे से चौथी लाईन **(शुद्धज्ञानपरिणत जीव) क्या करता है?** नीचे से चौथी लाईन। चौथी कहते हैं न? क्या कहते हैं? आहा..हा..! देखो! जैसे सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग अरहन्त प्रभु जैसे जगत के साक्षी-देखने-जाननेवाले हैं; वैसे धर्मी जीव अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप का ज्ञानरूप परिणमन हुआ, तो कहते हैं वह शुद्धपरिणत जीव क्या करता है। **[जाणदि य बंधमोक्खं] जानता है।** जानता है। **किसको? बन्ध-मोक्ष को।** आहा! यह तो कहते हैं कि राग का भाव है, उसे भी जानता है और राग छूट जाये तो मोक्ष की पर्याय (हो), उसे भी ज्ञानी जानता है। राग करता भी नहीं और राग छोड़ता भी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

भाई! भगवान! मार्ग तो... तात्पर्य कहते हैं न यहाँ? रहस्य है, जैनदर्शन का रहस्य है। जैनदर्शन, वह विश्ववस्तु जो है, उसका रहस्य है। विश्ववस्तु जो है आत्मा, परमाणु आदि। उस आत्मा का रहस्य यह है। समझ में आया? आहा..हा..! कहते हैं, जैसे सर्वज्ञ परमात्मा... उन्हें तो बन्ध है नहीं, मोक्ष है। वे तो जानते हैं। वैसे धर्मी जीव, सम्यग्दर्शन जहाँ से हुआ... लालचन्दजी! गजब बात! मैं तो चैतन्य आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञानसत्ता स्वभाववाला मैं हूँ। राग और पुण्य-पाप आदि सत्ता मुझमें नहीं है। मैं राग से-पुण्य से खाली और अपने पूर्ण ज्ञान-आनन्दस्वभाव से भरा पड़ा हूँ। ऐसी चीज़ की जहाँ दृष्टि हुई,

तो कहते हैं कि वह बन्ध को जानता है। आहा..हा..! और मोक्ष को भी जानता है। मोक्ष को करना है, और ऐसा-वैसा अब नहीं। अरे! समझ में आया? यह क्या कहते हैं? समझ में आया? बन्ध को तो करना नहीं है, परन्तु मोक्ष का भी करना नहीं है। मोक्ष होता है, उसे जानते हैं -ऐसा कहते हैं। पण्डितजी!

मोक्ष अर्थात् पूर्ण निर्मलपर्याय, पूर्ण आनन्द की दशा। पूर्ण आनन्द की दशा अर्थात् मोक्ष; विकारी की दशा अर्थात् संसार। उसका अभाव होकर पूर्ण आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द और पूर्ण ज्ञान (प्रगट हो), उसका नाम मोक्ष है। तो कहते हैं जब शुद्धज्ञानपरिणति, आत्मा (की) दृष्टि होकर अनुभव हुआ, वह तो मोक्ष को भी करता नहीं। हो जाता है। ऐ ई! ज्ञानी के व्यायाम की मस्ती भिन्न-भिन्न है, अलग प्रकार की है। ऐ ई! नन्दकिशोरजी! देखो! मार्ग जैनदर्शन का!

कहते हैं, वह तो बन्ध को और मोक्ष को जानता है। आहा..हा..! बन्ध के परिणाम और मोक्ष के परिणाम को जानता है, करता नहीं। यह क्या? समझ में आया? क्योंकि जहाँ शुद्धदृष्टि हुई और धर्म का शुद्ध परिणमन हुआ, फिर मोक्ष को करूँ... परिणाम तो परिणमता ही है, परिणाम तो परिणमता ही है, **वह तो धारावाही होता है। उसमें धारावाही होता है, उसमें मैं करूँ - ऐसा रहता नहीं।** पण्डितजी! यह गाथा जरा बहुत ऊँची है। समझ में आया? यह तो यहाँ क्लास (शिविर) होवे, तब थोड़ा लोगों के कान में तो पड़े। ऐसी मनुष्यदेह मिली और जैनदर्शन सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग / चीज़ क्या है, वह चीज़ कान में भी न पड़े तो उसे विचार में कैसे ले और दृष्टि में कैसे परिणमावे? आहा..हा..! समझ में आया?

कहते हैं, अरे! धर्मी जीव, सम्यक्चीज़ वस्तु चैतन्यभगवान पूर्ण प्रभु वस्तु—ऐसी पूर्ण की दृष्टि हुई तो वह ध्रुवस्वभाव-भगवान दृष्टि में आया। कहते हैं कि ज्ञान में, बन्ध होता है, राग जरा (होता है उसे) जानते हैं। अपने में बन्ध - ऐसा नहीं। राग भी भिन्न, यह मोक्ष की पर्याय भी मेरे द्रव्य से भिन्न। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बात है भगवान! आहा..हा..! मुझे पामर कहकर... पामर को प्रभु कहकर बुलाते हैं। वे सन्त ऐसा कहते हैं। ७२ गाथा में कहा था न? भगवान आत्मा! ऐसा कहा था। आहा..हा..! जैसे इसकी माँ, झूले में इसे सुलाने के लिये इसका गीत गाती है। समझ में आया? यदि इसकी निन्दा करे,

गाली दे तो नहीं सोयेगा, यह किसी समय देख लेना। ऐसा होवे तो भले बालक हो... समझ में आया ? परन्तु इसकी महिमा करे-म्हारो डिकरो डायो... यह तो हमारे काठियावाड़ी भाषा है। तुम्हारी कुछ भाषा होगी। डिकरो डायो; डायो समझे ? होशियार, सयाना, मामा के घर गया और छुआरा-खोपरा लाया - ऐसे गुणगान करे तब सो जाता है, सोता है। उसको गाली दे तो नहीं सोयेगा। मारा रोया ! बालक नहीं सोयेगा वह। अव्यक्तरूप से भी उसकी प्रशंसा रुचती है। ऐ शोभालालजी ! जैसे माता उसको सुलाती है, सन्त जगत को जगाते हैं - जाग रे जाग भगवान ! तू तीन लोक का नाथ आड़ में पड़ा, राग और पर्यायबुद्धि की आड़ में भगवान तुझे दिखाई नहीं देता। समझ में आया ?

'तिनके के ओट में पर्वत रे, पर्वत कोई देखे नहीं, तिनके की ओट में'। इतना बड़ा पर्वत हो, एक इतना तिनका रखा हो, पूरा पर्वत नहीं दिखता। ठीक है ? देखना तो यहाँ से (आँख से) है न ? आँख के ऊपर इतना तिनका रखे, लो न, इस चश्मे पर काला आवरण लगा दे तो पूरा पर्वत, पूरा समुद्र भी नहीं दिखता।

इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, इस राग और विकल्प की एकताबुद्धि में दिखता नहीं है। समझ में आया ? बाहर तो बहुत क्रिया करके मर गया, उसमें क्या है ? परन्तु यह विकल्प-राग उठता है, उसकी एकताबुद्धि अथवा पर्याय की एकताबुद्धि... आहा..हा.. ! उसमें भगवान तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, उस तिनके की आड़ में जैसे पर्वत नहीं दिखता; वैसे राग की एकता में, पर्याय की बुद्धि में द्रव्यबुद्धि त्रिकाल नहीं दिखता। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि आहा..हा.. ! ऐसा जब भान हुआ... समझ में आया ? शुद्धचैतन्य ज्ञानस्वभावी पवित्रधाम आत्मा है—ऐसी दृष्टि में सम्यग्दर्शन शुद्धरूप से परिणमन हुआ... अभी चौथे गुणस्थान की बात है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? इस चौथे का ठिकाना नहीं और पाँचवाँ तथा छठा लेकर बैठ गये। यह बारह व्रत है और प्रतिमा है... धूल भी नहीं है, सुन तो सही ! समझ में आया ? ऐ ई भगवानदासजी ! ऐसे सेठ हों और फिर सुविधाभोगी हों फिर कुछ त्याग करे तो ओहो..हो.. ! कहो, समझ में आया ? आहा..हा.. !

कहते हैं यह झूले में-अज्ञान में सोता है। ये परमात्मा सन्त इसे जगाते हैं। हे जाग

रे जाग नाथ! यह निद्रा अब तुझे नहीं हो सकती। समझ में आया? इस राग और पुण्य के विकल्प में भगवान सारा द्रव्य पड़ा है न प्रभु! आहा..हा..! **एक समय की पर्याय अर्थात् व्यक्त दशा पर तेरी रुचि है तो द्रव्य नहीं दिखता।** समझ में आया? और कहते हैं, जहाँ द्रव्य का भान हुआ... आठ वर्ष की बालिका हो, अरे! मेंढ़क हों मेंढ़क, डेढ़का (गुजराती में) कहते हैं न? मेंढ़क, मेंढ़क, मेंढ़क। भगवान के समवसरण में आत्मज्ञान पाता है। आत्मा है या नहीं? भगवान के समवसरण में परमात्मा बिराजते हैं। अभी त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में (बिराजमान हैं)। समझ में आया? उन भगवान के समीप मेंढ़क (आत्मज्ञान पाते हैं)। आहा..हा..! मेंढ़क तो शरीर मेंढ़क है। आत्मा कहाँ मेंढ़करूप हो गया है? समझ में आया? इस ज्ञानस्वरूप भगवान का भान तो भगवान के समवसरण में मेंढ़क कर लेता है। वह भी ऐसा जानता है कि बन्ध और मोक्ष का तो मैं जाननेवाला हूँ। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वह तो छोटा सा शरीर....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटा तो शरीर छोटा है। वस्तु (आत्मा) छोटी है? कहो, यह क्या कहलाता है तुम्हारे? उसने नहीं मारा था बम, एटम बम, बम मारा तो कहीं उस दो सौ-ढाई सौ योजन में भुक्का उड़ गया था कहीं (हिरोशिमा) कहाँ? हाँ, बम इतना छोटा, बम में अनन्त परमाणु है - कहते हैं छोटा, छोटा वहाँ नहीं है। एक बम छोटा इतना लो राई जितना, उसमें भी अनन्त परमाणु-रजकण हैं।

ऐसी शक्ति पड़ी है कि ढाई सौ योजन का भुक्का उड़ा दिया। शक्ति इतनी है, वह तो निमित्त हुआ। यहाँ तो दृष्टान्त देना है, हों! रजकण पर का चूरा कर सकता है ऐसा नहीं है। क्योंकि अपनी सत्ता को छोड़कर पर की सत्ता को छूता ही नहीं। आहा..हा..! परन्तु उसमें शक्ति इतनी है कि हजारों योजन में राख कर डाले, चूरा कर डाले; इसी प्रकार भगवान आत्मा (का) क्षेत्र भले छोटा हो, भगवान आनन्दधाम (है)। समझ में आया? शुद्ध चैतन्यवस्तु, उस मेंढ़क की देह में भी तो आत्मा तो ऐसा ही है; जैसा यहाँ (अपना) आत्मा है, ऐसा वह आत्मा है। समझ में आया?

वह भी आत्मा का सम्यग्दर्शन-शुद्धस्वभाव का परिणमन करता है तो वह बन्ध को जानता है। समझ में आया? किसी ने प्रश्न किया है, निहालभाई से प्रश्न हुआ था कि तुम

कहते हो कि ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. भाई! प्रश्न है उसमें। ध्रुव नित्यानन्द को पकड़ो, परन्तु मेंढ़क कहाँ पकड़े त्रिकाल को? वह तो पर्याय को जानते, संवर-निर्जरा आदि की हुई उसे, सुख को वेदते हैं, प्रभु! सुख को-आनन्द को वेदते हैं न मेंढ़क? तो आनन्द का धाम क्या है—ऐसी दृष्टि हुए बिना सुख का वेदन नहीं हो सकता। समझ में आया? निहालभाई से किसी ने प्रश्न किया था। पुस्तक दी थी तुम्हें, पुस्तक छोटी, हाँ! बड़ी तो अभी सूक्ष्म है, तुम्हारा काम नहीं। अजर प्याला है। निहालभाई का अजर प्याला है। ऐ ई! कहाँ गये? ऐ राजमलजी! राजमलजी याद आये, तुम्हारे लिये ले गये थे, यह दलाली करके। समझ में आया?

भगवान आत्मा... उसने पूछा भाई! तुम ध्रुव... नित्य... नित्य... नित्य... ध्रुव की दृष्टि करो, ध्रुव की दृष्टि करो, त्रिकाल की दृष्टि करो तो सम्यग्दर्शन होगा; पर्यायदृष्टि छोड़ो तो (सम्यग्दर्शन होगा), मेंढ़क को क्या ध्रुव की दृष्टि हुई? उसको तो आनन्द का अनुभव है। तो कहते हैं कि भगवान! सुन तो सही! जो दुःख का वेदन था, राग और द्वेष का वर्तमान दशा की ओर के लक्ष्य से वेदन था, वह आनन्द का वेदन आया, वह कहाँ से आया? उस ध्रुव पर दृष्टि पड़ी, तब आनन्द का वेदन हुआ। समझ में आया? सूक्ष्म बात है भगवान! यह तो अकेला मक्खन है-प्रीतिभोज है, हरख जीमण, हरख जीमण समझे? विवाह के बाद नहीं करते? अन्तिम दिन का भोजन करते हैं न!

यहाँ कहते हैं ओ..हो..! वह तो जानता है। **किसको? बन्ध-मोक्ष को।** आहा..हा..! **मात्र बन्ध-मोक्ष को नहीं,...** इतना ही नहीं तब **[कम्मुदयं णिज्जरं चेव]...** कम्मुदयं णिज्जरं—दो बोल लिये हैं। कर्म उदय **शुभ-अशुभरूप कर्मोदय को...** क्या कहते हैं? जैसा कर्म का उदय आवे, उसे भी जानता है। अशुभ का उदय हो तो ऐसा जाने, शुभ का हो तो ऐसा जाने, जानता ही है; उसे दूसरा कुछ है नहीं। अशुभ-शुभ कर्म में वह है ही नहीं। शुभ-अशुभ कर्म का उदय आया और शुभ-अशुभ के कारण से बाहर में प्रतिकूल-अनुकूल संयोग हुआ, उसे भी जानता ही है। कोई प्रतिकूल है और अनुकूल है-ऐसा है नहीं। आहा..हा..! देखो यह धर्म।

पहले निर्णय तो करो कि यह मार्ग ऐसा है, दूसरा मार्ग है नहीं। आहा..हा..! कहते हैं **शुभ-अशुभरूप कर्मोदय को...** जैसा शुभ हो तो शुभ को जाने, वह तो ज्ञान की पर्याय,

शुभ आया तो जानने की पर्याय प्रगट हुई, उसी समय; समय तो एक है। कि यह शुभ है, तो ज्ञान की पर्याय हुई – ऐसा तो है नहीं। अपने में से ही ऐसा स्व का ज्ञान और राग शुभ हो या अशुभ हो, उदय शुभ हो या अशुभ हो, ऐसे जानने की पर्याय अपनी सत्ता से, अपने कारण से, राग की अपेक्षा रखे बिना अपनी पर्याय में जानने की पर्याय प्रगट होती है। आहा..हा..! इसमें थोड़े एक अक्षर का फेरफार हो तो सारा तत्त्व बदल जाये – ऐसी बात है। फिर से... हैं? फिर से, ऐसा कहा...

मुमुक्षु : जादू की लकड़ी...

पूज्य गुरुदेवश्री : जादू की लकड़ी, जादू की लकड़ी कहते हैं। अब तो लकड़ी रही नहीं। पहले सूखड़ की थी। अब दूसरी यह प्लास्टिक की आ गयी। वह डाक्टर आया था न चन्दूभाई, उसने बनायी है। हाथ में पसीना न हो और शास्त्र को छूएँ नहीं, इस कारण से (बनायी है) उसमें लोग कहते हैं–बहुत लोग कि जिस पर लकड़ी फिरावे, उसके पास पैसा हो जाता है। समझ में आया? पहले से पुण्य की ऐसी छाप है न? आहा..हा..! तो कहते हैं, यहाँ तो यह तत्त्व की लकड़ी फिरे तो उसका कल्याण हो जाये, उसका नाम यहाँ जादू है। इस लकड़ी में क्या है, यह तो धूल है और पैसा मिले उसमें क्या है? वह भी धूल है।

यहाँ कहते हैं, धर्मात्मा उसे कहते हैं–कर्मोदय को अपना न जाने, शुभ को अपना न जाने, अशुभ को अपना न जाने परन्तु शुभ–अशुभ की ज्ञान की पर्याय हो, उसे जाने ऐसा है बस। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात भाई! जैनधर्म कैसा है, यह बात समझना जगत को कठिन हो गया है। जैनधर्म ऐसा है–पर की दया पाले वह जैनधर्म है, ऐसा है?

मुमुक्षु : स्वयं ही जैन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं ही जैनस्वरूप है। सुन तो सही! ऐ ई! इसका अर्थ क्या? कि जो पुण्य–पाप का राग है, वह तो दोष है, कृत्रिम–क्षणिक है, उससे रहित है–राग–द्वेषरहित ही चैतन्यद्रव्य है। जो है राग–द्वेषरहित है तो वीतरागता अन्दर में प्रगट है तो प्रगट होती है। जिनस्वरूप ही आत्मा है। समझ में आया? ऐसा दृष्टि में भान हुआ तो कहते हैं कर्म उदय को जानता है। आहा..हा..! समझ में आया?

वह आता है न? 'काग बीट सम गिनत है सम्यग्दृष्टि लोग।' 'चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्र सरीखा भोग, काग बीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।' आहा..हा..! मन्दिर में

लिखा है, इन्दौर में वह काँच का मन्दिर है न भाई का-सेठ का-सर हुकमचन्द का है, उसमें ऊपर लिखा है, अर्थ समझते नहीं।

धर्मी जीव, चाहे तो अनुकूलता का ढेर हो, 'काग बीट सम मानता है।' मनुष्य की विष्टा तो अभी सूकर ही खाता है, कौवे की विष्टा तो निकलते ही तुरन्त सूख जाती है कि सूकर नहीं खा सकता। समझ में आया? उज्जैन में डाला था, नहीं? ए ई! चाँदमलजी! उज्जैन में रखा था, बोर्ड लगाया था। वे भूल गये लगते हैं। मैंने कहा था, बोर्ड तो तुमने बनाया था ऊपर व्याख्यान हॉल में, उज्जैन में गये थे न? 'काग बीट सम मानत है' यह सारी बाहर की विभूति तो नाक का मैल है। समझ में आया?

जानता है, बस ज्ञान होता है। यह ज्ञान भी, वह चीज़ है तो होता है-ऐसा भी नहीं है। **जहाँ ज्ञान है, वहाँ से ज्ञान आता है और परिणमन होता है।** समझ में आया? ऐ ई अमीचन्दजी! ऐसा मार्ग बहुत कठिन, भाई! मार्ग सारे समाज को-सबको लागू पड़े ऐसा चाहिए न? एक को लागू पड़े... लागू पड़े क्या? (घटित हो) यह तो सबको घटित हो, मार्ग तो एक ही है। सब मुख से खाते हैं, कोई सिर में से खाता है? मार्ग तो एक ही है। बालक को, वृद्ध को, युवक को, स्वर्ग को, नारकी को, मेंढ़क हो या बड़ा चक्रवर्ती राजा हो, धर्म तो यह एक ही प्रकार का यही है। इसमें दूसरा कोई प्रकार नहीं है।

कम्मुदयं वह तो जानता है, वह तो जानता है, वह मेरेरूप से नहीं जानता। परद्रव्य का अपने में से अपने से ज्ञान होता है, उसे जानता है। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि लोग। **सविपाक-अविपाकरूप...** निर्जरा की व्याख्या। पहले कम्मुदयं का कहा न? पहले कर्म के उदय का लिया न? फिर अब **सविपाक-अविपाकरूप से और सकाम-अकामरूप से दो प्रकार की निर्जरा...** गजब बनाया है। क्या कहते हैं? अपना शुद्धस्वरूप निर्मल प्रभु-ऐसी प्रतीति और भान-शुद्ध परिणमन हुआ, उसका नाम धर्मी, उसका नाम सम्यग्दृष्टि है।

वह, **सविपाक...** समय-समय में, क्षण-क्षण में पूर्व का जो कर्म बँधा है, वह समय-अवधि होकर खिर जाता है। जो पूर्व में कर्म बँधा है, उसकी अवधि होकर स्थिति होकर खिर जाता है, उसका नाम सविपाक निर्जरा है। कर्म अपना पाक पूरा हुआ और खिर जाना, सविपाक—पाक-कर्म का रजकण जो पड़ा है, उसका पाक होकर, सविपाक =पाकसहित खिर जाना। उसमें आत्मा का कोई पुरुषार्थ नहीं है। समझ में आया? कहते

हैं, देखो! जैसे यह मनुष्यगति में यहाँ अभी कर्म तो चारगति के बँधे पड़े हैं। आयुष्य नहीं, गति की बात मैं करता हूँ, तो यहाँ मनुष्यगति का उदय है और गति तो चार का अन्दर उदय है परन्तु विपाक फलरूप से यह एक है परन्तु वह भी विपाक होकर चार गति का उदय होकर खिर जाता है। तीन गति का उदय अभी खिर जाता है। क्या कहा? हाँ, जैसा उदय आया, आकर खिर जाता है ऐसा वह खिर जाता है। निरन्तर गति का उदय होता है, चारों का ही चारों का ही उदय एक मनुष्य का तो प्रत्यक्ष है और तीन हैं, वे खिर जाते हैं। उदय आकर (खिर जाते हैं)। समझ में आया जरा? आयुष्य एक होता है।

मुमुक्षु : संक्रमण होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संक्रमण नहीं। वह तो गति का उदय आकर खिर जाता है बस, खिर जाता है, संक्रमण नहीं। सुनो! **सविपाक...** स अर्थात् विपाक फलसहित, तो जैसा कर्म पूर्व में बाँधा था तो उसकी अवधि हो तो आया और खिर जाता है, उसका नाम सविपाक (निर्जरा कहलाता है)। उसमें कोई तपस्या या ज्ञानानन्द करना हो तो खिरे-ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया? बँधा हुआ कर्म अपनी अवधि पूरी होने से समय-समय में उदय आकर खिर जाता है, उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं।

मुमुक्षु : रोजाना नया-नया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब नया ही है न? आहा..हा..! अन्तर चीज़ की क्या चीज़ है! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव, सौ इन्द्रों के पूज्य प्रभु ने क्या कहा था और हम क्या मानते हैं, उसकी कुछ खबर नहीं। समझ में आया? ओघे-ओघे - कहा था न भेड़चाल! भेड़चाल, कोई कहता था। कल बात हुई। भेड़ का आचार होता है न? वैसे भेड़ का आचार होता है न? वैसे भेड़िया आचार। दुनिया करे वैसा किये जाये परन्तु सत्य क्या है, उसकी खबर नहीं। है? कोई कहते थे, भेड़चाल क्या? भेड़िया घसाण।

मुमुक्षु : कोई करे वैसे किया करे वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है, किन्तु शब्द क्या है? वह तो हमें पता है न? तुम्हारी भाषा क्या है? घसाण, हाँ, वह भेड़िया घिसता है न यहाँ! घसाण। आहा..हा..! ऐसे भेड़िया जैसे सब अनादि से घिसते हैं-ऐसा कहते हैं। अज्ञानी करते हैं और अज्ञानी

मनाते हैं, वैसे चले जाते हैं। वे नीचे नजर रखते हैं ने वह भेड़िया-चले जाते हैं, मार्ग क्या है उसका पता नहीं है।

धर्मी जीव अपना स्वरूप राग, पुण्य और शरीर से जब भिन्न जानने में आया... जब तक राग और शरीर मेरा है और मैं उस सहित हूँ—ऐसी दृष्टि थी, तब तक मिथ्यादृष्टि अधर्मी पापी था। समझ में आया? जब वह दृष्टि गुलांट खा गयी। समझ में आया? वे नट नहीं होते नट? नट नाचते हैं न? नट नाचते हैं न? ऐसे-ऐसे नाचते-नाचते जब गुलांट खाते हैं, नट नाचते हैं न? दुकान पर आते हैं न, हमारे वहाँ दुकान थी तो बहुत पैसा लेने को बहुत आते थे, तो ऐसा करके गुलांट मारते। ऐसे एक बार नाचकर, कहते हैं। राग और पर्याय की बुद्धि है, वह छोड़ दे। द्रव्यबुद्धि-त्रिकाली ज्ञायक में गुलांट खा।

मुमुक्षु : गुलांट कैसे खाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा..! कहते हैं न, ऐसे खाना। ऐसी (पर के ऊपर) दृष्टि है (तो ऐसी दृष्टि स्व के ऊपर) वह गुलांट (अर्थात् अभिप्राय बदलना) है।

बात बस यह, जो राग और पर्याय - एक समय की पर्यायबुद्धि है, वह द्रव्य पर बुद्धि करना।

मुमुक्षु : मुझे ऐसा कहना है कि गुलांट किस क्रिया से खायी जाती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया-फ्रिया क्या थी फिर! धूल की क्रिया?

मुमुक्षु : ज्ञान क्रिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ ठीक है, बराबर पूछते हैं। लोग क्रिया करते हैं न, क्रिया करते हैं न? क्रिया करते-करते ऐसी दृष्टि होगी? धूल में नहीं होगी। समझ में आया? अपना अभिप्राय जो पर के ऊपर है, वह स्व के ऊपर लेना। बस, दूसरी कोई क्रिया उसकी है नहीं। आहा..हा..! नन्दकिशोरजी! कोई ऐसी बात है। मार्ग ऐसा है। तुम्हारे गाँव में ऐसी बात तो नहीं चलती, हों! एक दिन में कहाँ से चले विदिशा में? कहाँ गये राजेन्द्र सिंह? क्या नाम है? राजेन्द्रकुमार कहाँ गये? ...कर्म के उदय को जानता है और सविपाक निर्जरा-कर्म की अवधि पूरी होने पर खिर जाये, उसे जानता है।

अविपाक... दूसरा शब्द। अविपाक का क्या अर्थ? उसमें भी है तो कालक्रम, हों!

समझ में आया? अभी कहीं पढ़ा था, यहाँ तो तत्त्वार्थ था परन्तु अन्यत्र कहीं था। यथाकाल, तो उसमें भी लेना, ऐसा कहते हैं। विपाक में भी यथाकाल है (ऐसा लिखा है)। वहाँ तो लिखा है परन्तु दूसरा कहीं लिखा है। किसी जगह लिखा है अवश्य? हाँ, यह योगसार में होगा। इस योगसार में होगा? योगसार है न, अमितगति आचार्य, अमितगति आचार्य का योगसार है, उसमें लिखा है। ऐसे कर्म की बात यथार्थभाव-वह सारा व्याख्यान हो गया है। योगसार, समयसार की शैली का है। योगसार, अमितगति आचार्य का (है) उस पर व्याख्यान हो गया है। उसमें ऐसा लिखा है जिस समय कर्म का उदय आनेवाला है, वह विपाक खिर जाता है, अविपाक भी उसके काल में ही आता है परन्तु यहाँ पुरुषार्थ चैतन्य पर किया, शुद्धज्ञानानन्दमय हूँ—ऐसी दृष्टि और पुरुषार्थ स्व-सन्मुख किया तो उस खिरने को अविपाक निर्जरा कहने में आता है। उसमें क्रमबद्ध है न! पण्डितजी! उसमें क्रमबद्ध है।

मुमुक्षु : जो सविपाक निर्जरा है, वह मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों को होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों को होती है। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है। मिथ्यादृष्टि का यहाँ काम नहीं। सम्यग्दृष्टि को चार प्रकार की निर्जरा होती है। वह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

ज्ञानी को अपने चैतन्यस्वरूप का भान-अनुभव हुआ और आनन्द का वेदन हुआ, उसे भी सविपाक-अविपाक और सकाम, अकाम चार प्रकार के कर्म खिरते हैं। वे चारों ही प्रकारों को जानते हैं। यह तो चार की व्याख्या करते हैं। सविपाक अर्थात् कर्म की अवधि पूरी होने पर खिरते हैं, उसकी अवधि को अविपाक भी खिरा है परन्तु अपने स्वभावसन्मुख में आनन्द में महा लवलीन हुआ, अपनी दृष्टि में-वस्तु में एकाकार हुआ तो जो कर्म खिरा, एकदम खींचकर-खींचकर (खिरा) परन्तु उस समय खिरने की चीज़ वह खिर गयी परन्तु उसमें पुरुषार्थ का इस ओर में निमित्त पड़ा और खिर गया, वह अविपाक है। उसमें पाक यहाँ अनुभव में आया - ऐसा है नहीं। बहुत सूक्ष्म। फिर बात, फिर बात, फिर लेते हैं।

मुमुक्षु : अपनी समझ में तो कुछ नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिये तो फिर से कहते हैं। कर्म-निर्जरा के दो प्रकार हैं। एक

तो अवधि पूरी हो और खिरते हैं। दूसरी भी अवधि तो है परन्तु यहाँ पुरुषार्थ स्वसन्मुख किया है तो उस कारण वह पाक उस ओर का पर्याय में पाक के फल में एकताबुद्धि बिल्कुल नहीं रही, समझ में आया? उसके कारण उस कर्म की पर्याय जो है, वह खिर जाती है, उसे-धर्मी को अविपाक निर्जरा होती है। मिथ्यादृष्टि को अविपाक निर्जरा नहीं होती। मिथ्यादृष्टि को सविपाक निर्जरा होती है परन्तु अविपाक नहीं होती है। समकिती को दोनों होती है। आहा..हा..! गजब बात, भाई! समझ में आया? रात्रि को प्रश्न पूछना, जरा सूक्ष्म बात है। तत्त्वार्थसार में भी ऐसा लिया है। भाई ने उसका बहुत सरस अर्थ किया है। क्रम प्राप्त तो दोनों ही है, आया था न भाई! प्रश्न तुम्हें? क्रम प्राप्त तो दोनों ही है परन्तु यहाँ पुरुषार्थ कहा, तो वह पुरुषार्थ करने से खिरना वह तो कर्म का उदय आया और खिर गया, बस! अवधि पूरी होते खिर जाता है, बस! किन्तु यहाँ स्वभावसन्मुख आनन्दकन्द में जहाँ पुरुषार्थ किया - प्रयत्न किया-प्रयत्न किया वह भी पर्यायदृष्टि की बात है परन्तु प्रयत्न ध्रुव पर लग गया, उसका नाम पुरुषार्थ की जागृति और तपस्या कहने में आता है। यह तप (है)। अपवास-वपवास करना, वह तप है नहीं। आहा..हा..! यह तप का अर्थ 'तपन्ति इतिः तपः' जैसे स्वर्ण / सोना स्वर्ण गेरु से शोभित होता है। गेरु होता है न गेरु? सोना, स्वर्ण शोभित होता है; वैसे भगवान आत्मा शुद्ध वीतराग पवित्र जो दृष्टि में आया है, उसमें पवित्रता की वृद्धि होती है, शुद्धता की वृद्धि होती है, उसे भगवान तपरूपी भावनिर्जरा कहते हैं। गजब बात, भाई!

गोंडल दरबार था न गोंडल दरबार? गोंडल बड़ा दरबार था तो उसका शिक्षा अधिकारी था चन्दूभाई पटेल। उसके प्रति बहुत प्रेम था तो अपनी बात बहुत सुनता था, वहाँ दरबार के पास जाकर कहे महाराज (ने) ऐसा कहा महाराज! अर्थ ऐसा कहा। तो गोंडल दरबार कहे, पीछे कहे शब्दकोश है उसका गोंडल में। भगवान गोमण्डल शब्दकोश ऐसी छह बड़ी पुस्तकें बनायीं तो महाराज के प्रत्येक शब्द के अर्थ में अन्तर पड़ता है तो अपने भी डालो। भगवत् शब्दकोश में उसमें कितने ही डाले हैं। समझे? गोमण्डल की है। अपने पास यहाँ पुस्तक है। बड़े शब्दकोश के (बड़े) हाँ, बड़ी पुस्तकें हैं। छह शब्द डाले हैं, थोड़ा दरबार को रस था, दरबार तो आ नहीं सके परन्तु उनका शिक्षा अधिकार था, चन्दूभाई पटेल, उसका यह चन्दूभाई पटेल दरबार के पास जाये, दरबार कहे, महाराज कहते हैं वह शब्द अपने शब्दकोश में डालना। तो शब्दकोश में ऐसा बहुत आया है। समझ में आया?

बन्ध-मोक्ष को जानता है; सविपाक और अविपाक को जानता है। आहा..हा..! कर्ता नहीं - ऐसा यहाँ कहना है, भाई! फिर से-सविपाक निर्जरा का तो कर्ता नहीं परन्तु अविपाक निर्जरा का भी कर्ता ज्ञानी नहीं। आहा..हा..! कर्म रजकण है न? गजब बात भाई! भगवान! तुझमें तो ज्ञान भरा है। तुझमें क्या पर को-कर्म को निर्जराऊँ ऐसा है? वह तो कर्म निर्जरित हो जाते हैं अविपाकरूप से, उसको जाननेवाला आत्मा है। आहा..हा..! भाई! कान में तो पड़े कि यह कोई वीतरागमार्ग है। समझ में आया? कोई चीज़ है वीतरागमार्ग मैं यह चीज़ समझे बिना रह गयी है और यह समझे बिना इसका छुटकारा नहीं होगा; चार गति का (परिभ्रमण) होगा मर जायेगा, भटक मरेगा। कहीं सुख है नहीं। ऐ सेठी! सेठ! कहीं सुख है नहीं धूल में, तुम्हारे छह लाख के बंगला संगमरमर का बड़ा बंगला-उसको पच्चीस लाख का है, वहाँ एक गोवा में शान्तिलाल खुशाल, चालीस लाख का, पैसा अधिक हो तो बड़ा हजीरा बनवावे। हजीरा समझ में आता है न? लोटियावोरा जिसमें दबाते हैं, उसे हजीरा कहा जाता है। वोरा कहते हैं न? वोरा नहीं कहते? लोटियावोरा नहीं होते? लोटियावोरा होते हैं। हजीरा है। जामनगर में बड़ा हजीरा है, नदी के किनारे वे लोटियावोरा नहीं होते? मुसलमान टोपी पहनते हैं न वोरा, उन्हें जहाँ दबावें, उसका नाम हजीरा कहते हैं। यहाँ भी भगवान कहते हैं आत्मा के भान बिना हजीरा में पड़े नेवला-चूहा जैसा है। ऐ ई! आहा..हा..!

कहते हैं भगवान आत्मा 'सकाम-अकाम निर्जरा' लो! कभी शब्द का भी पता नहीं होगा कि क्या होगा? पहले ऐसा कहा कि सविपाक अर्थात् कर्म का उदय आवे और खिर जाये, उसे भी जाने, बस जाने, करे नहीं और अविपाक-पुरुषार्थ से अपनी स्थिरता हुई, तो कर्म खिर जाते हैं, उसे अविपाक कहते हैं। उस अविपाक को ज्ञानी आत्मा करता नहीं; जानता है। **सकाम...** यह सकाम कहो या अविपाक कहो। यहाँ अविपाक, परमाणु की अपेक्षा से है और सकाम, अपने पुरुषार्थ की जागृति की अपेक्षा से है। आहा..हा..! फिर से-अविपाक निर्जरा है, वह कर्म के रजकण की अपेक्षा से है और सकाम निर्जरा है, वह अपने शुद्ध उपयोग में उग्र रमणता हुई, अपने पुरुषार्थ से (उग्र रमणता हुई), उस भाव को सकाम निर्जरा कहने में आता है। आहा..हा..! गजब बात भाई! समझ में आया? यह जरा सूक्ष्म है थोड़ा।

सकाम... अर्थात् पुरुषार्थ की जागृति से निर्जरा हुई। अपनी भावना से हुई। अपना शुद्ध भगवान आत्मा की दृष्टि तो है और उसमें उग्र पुरुषार्थ करके जो निर्जरा हुई, उसका नाम सकामभाव निर्जरा कहते हैं। आहा..हा..! गजब समाहित किया, थोड़े में भी!

अकाम निर्जरा... अकाम निर्जरा की व्याख्या कि इच्छा न होने पर भी प्रतिकूल संयोग में राग की मन्दता से सहन हुआ, उसका नाम अकाम निर्जरा कहते हैं। ऐसे ज्ञानी को भी अकाम निर्जरा होती है, मन्द कषाय। जैसे व्यापार में बैठे हो और भोजन का समय ग्यारह बजे का हो और जरा ग्राहक ऐसा आ गया तो भोजन दो-तीन घण्टे आगे चला गया; था ज्ञानी। समझ में आया? इच्छा नहीं थी कि मुझे दो बजे आहार लेना, दूध लेना, इच्छा तो दस बजे की थी परन्तु ऐसा कोई ग्राहक आया तो उसमें रुक गया तो इसमें कषाय की मन्दता हुई। इच्छा नहीं थी कि यह नहीं करना या दूध नहीं पीना ऐसा, परन्तु फिर भी ऐसे कारण में ऐसा संयोग आ गया तो उसमें मन्द कषाय का भाव रहा तो उसमें कर्म खिरे, उसका नाम अकाम निर्जरा कहते हैं। अरे!

ज्ञानी ऐसे बिल्कुल किसी का कर्ता नहीं। (जाननेवाला है)।

मुमुक्षु : अकाम और अविपाक क्या अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं? क्या? अकाम और सविपाक। सविपाक तो उदय आकर खिर जाता है इतना; और अकाम में प्रतिकूल संयोग ऐसा आया, सहन करने की इच्छा नहीं थी; नहीं खाना—ऐसी इच्छा नहीं थी परन्तु खाना सहज दूर हो गया, उसमें कषाय की मन्दता आ गयी तो उसका नाम अकाम निर्जरा है। जैसे पशु। यहाँ तो समकिती की बात है। पशु, छप्पनियाँ के दुष्काल में बहुत दुःख, पशु को घास नहीं मिलता था। समझ में आया? छप्पन, हमने तो बहुत नजरों से देखा है न, दस वर्ष की उम्र थी छप्पन में, तो ऐसा आँख में आँसू परन्तु ऐसा खाने का भाव था, किन्तु प्रतिकूल संयोग में अन्दर में किसी को कषाय मन्द हो गयी, मन्द हो गयी तो इसे अकाम निर्जरा कहने में आता है। ऐसा (जीव) मरकर स्वर्ग में भी जाये-मिथ्यादृष्टि हो परन्तु अकाम निर्जरा से स्वर्ग में भी जाये परन्तु उसकी बात यहाँ नहीं है। यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात है।

विशेष लेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)